THE TIMES OF INDIA

Date:24-10-23

Listen More, Leaders

Poll ticket tiffs reflect centralisation of power in all parties. Small local units should get more say

TOI Editorials

A recurring pattern in the run-up to elections are sharp reactions from prospective candidates and their supporters when their political party ignores them in ticket distribution. The political drama ahead of the five forthcoming assembly elections includes party hopping, workers protesting after their local leaders failed to get a ticket and frantic troubleshooting by central observers of parties. These recurring developments are symptoms of a larger trend in Indian politics, which is going through an unprecedented centralisation of power within parties, national and regional.

Political scientist Neelanjan Sircar has argued that centralisation is a structural aspect of Indian politics, one where regional parties took a lead. Centralisation is triggered by another key characteristic of Indian politics, fickle loyalties to political parties. For example, in the last couple of rounds of assembly elections we saw former chief ministers, no less, from BJP and Congress switch party loyalties after being sidelined. Sircar posits centralisation as a risk mitigation effort and it's complemented by a conscious effort to "centralise political attribution" to fiscal and other benefits. This is meant to preserve the power of a dominant leader, faction or family in the backdrop of shallow commitments.

Whatever the explanation, the outcome is a growing gulf between local political hierarchies and a party's high command. It's not good for democracy as local party organisations are an important link between the executive and citizens. Disempowering them hurts democracy. Consequently, some other democracies have moved towards increasing the say of local party functionaries. Consider the example of the UK's Conservative Party. It's made a conscious effort over the last couple of decades to move away from a clubby approach to selecting candidates to holding primaries that see the participation of voters. In the 2019 UK elections, parties sent the candidates' list to local units for a final say.

Germany has a structural solution. German voters exercise two options for the Bundestag elections. One vote is for the candidate to represent their constituency and the other is for a political party of their choice. Consequently, a German voter can opt for different parties. The system, however, is designed to incentivise the election of effective candidates at the local level even if they belong to a party that doesn't appeal to a voter. India's political parties need to take a leaf out of the book of politics elsewhere.

दैनिक भास्कर

Date:24-10-23

कुपोषण से जुड़ी सच्चाई से मुंह नहीं मोड़ सकते

संपादकीय

इस बार फिर विश्व भूख सूचकांक में भारत चार खाने नीचे गिरकर 125 देशों में 111वें स्थान पर है। हर बार की तरह सरकार ने फिर इसे गलत करार दिया है। लेकिन दुनिया के तमाम मुल्क इसे मानते हैं और उसके मुताबिक अपनी योजनाएं बनाते हैं। यह सही है कि मूलतः यह भूख सूचकांक न होकर कुपोषण और वह भी बाल कुपोषण पर ज्यादा आधारित है। यह भी सच है कि पारम्परिक मायने में भूख यानि अनाज की उपलब्धता में कमी, जो कि भारत में नहीं है। लेकिन क्या सिर्फ एक शब्द की वजह से कुपोषण जैसे शाश्वत दानव को हम मरा मान सकते हैं? सरकार को रिपोर्ट खारिज करने की जगह यह देखना होगा कि क्यों देश में इस समस्या का निदान दशकों से नहीं हो पाया है। फिर अगर रिपोर्ट में पैरामीटर गलत हैं तो पूरी दुनिया के लिए गलत हैं, केवल भारत के लिए नहीं। क्या वजह है कि भारत पिछले आठ वर्षों में लगातार भूख सूचकांक में गिरता ही जा रहा है। (दो वर्षों में एक-आध खाने ऊपर होने के अलावा) यह स्थिति कमोबेश साल-दर-साल बनी हुई है। क्या किसी भी कल्याणकारी राज्य का पहला और अंतिम कर्तव्य देश के नौनिहालों को कुपोषण से बचाना नहीं होना चाहिए? क्यों चीन इस सूचकांक में चौथे स्थान पर है? जीडीपी में दस साल में अगर हम दसवें स्थान से पांचवें पर आ गए हैं, लेकिन इसी काल में कुपोषण बढ़ता गया है, तो हमें खुश होना चाहिए या नीतियों और प्राथमिकताओं में व्यापक बदलाव करना चाहिए? सच्चाई से आंखें मोड़कर हम देश के भविष्य को संकट में डाल रहे हैं। क्या कुपोषित बच्चों से अगले 50 साल में भी हम डेमोग्राफिक डिविडेंड का फायदा ले सकेंगे? फिर सरकार यह न भूले कि इस सूचकांक को तैयार करने में जो चार पैमाने हैं उनमें से तीन भारत सरकार के अपने एनएफएचएस-5 से लिए गए हैं।

दैनिक जागरण

Date:24-10-23

प्रत्याशी चयन की प्रक्रिया

संपादकीय

विधानसभा चुनाव वाले राज्यों और विशेष रूप से मध्य प्रदेश और राजस्थान में प्रत्याशियों के चयन से क्षुब्ध नेताओं एवं उनके समर्थकों का जैसा असंतोष देखने को मिल रहा है, उस पर आश्चर्य नहीं। मध्य प्रदेश और राजस्थान में कांग्रेस के साथ भाजपा को भी चुनाव लड़ने के दावेदार नेताओं की नाराजगी का सामना करना पड़ रहा है। कई नेताओं ने टिकट न मिलने से खफा होकर या तो पार्टी छोड़ने का फैसला सुना दिया है या फिर निर्दलीय प्रत्याशी के रूप में चुनाव मैदान में उतरने की घोषणा कर दी है। असंतोष कितना गहरा है, इसका पता इससे चलता है कि मध्य प्रदेश में जहां भाजपा कार्यकर्ताओं ने विरोध प्रदर्शन के साथ केंद्रीय मंत्रियों का घेराव किया, वहीं कांग्रेस के कार्यकर्ताओं ने अपने वरिष्ठ नेताओं के पुतले जलाए। मध्य प्रदेश की तरह राजस्थान में भी कांग्रेस और भाजपा के कई नेता अपने समर्थकों के साथ धरना-प्रदर्शन का सहारा ले रहे हैं। छत्तीसगढ़ में भी कांग्रेस और भाजपा के कई नेता विद्रोह की राह पर जाते दिख रहे हैं। हालांकि भाजपा और कांग्रेस अपने असंतुष्ट नेताओं को मनाने की कोशिश कर रही हैं, लेकिन यह तय है कि उन्हें या तो विद्रोही प्रत्याशियों का सामना करना पड़ेगा या फिर उनके भितरघात से दो-चार होना पड़ेगा।

यह कोई पहली बार नहीं है, जब राजनीतिक दलों को चुनाव के अवसर पर अपने नेताओं के विद्रोह का सामना करना पड़ रहा हो। ऐसा अब कुछ अधिक ही होने लगा है और इसका कारण यही है कि किसी भी दल ने प्रत्याशी चयन की कोई तार्किक और पारदर्शी प्रक्रिया नहीं अपना रखी है। निःसंदेह राजनीतिक दल चुनाव लड़ने के आकांक्षी हर नेता को संतुष्ट नहीं कर सकते, लेकिन वे प्रत्याशी चयन के कुछ तय मानदंड तो अपना ही सकते हैं। यद्यपि प्रत्याशी चयन की कोई लोकतांत्रिक प्रक्रिया न अपनाने के दुष्परिणाम राजनीतिक दलों को ही भोगने पड़ते हैं, लेकिन इसके बाद भी वे कोई सबक सीखने को तैयार नहीं। यह ठीक नहीं कि प्रत्याशी चयन की प्रक्रिया में कार्यकर्ताओं की कहीं कोई भूमिका न हो। होना तो यह चाहिए कि प्रत्याशी चयन में कार्यकर्ताओं के साथ आम जनता की भी कोई भूमिका हो, जैसा कि कुछ देशों में देखने को मिलता है। भले ही राजनीतिक दल यह दावा करते हों कि प्रत्याशियों का चयन करने के लिए वे कई तरह के सर्वेक्षण कराते हैं, लेकिन इस दावे की पोल तब खुलती है, जब ऐसे प्रत्याशी चुनाव मैदान में दिख जाते हैं, जिनका कुछ दिन पहले तक राजनीति से कोई लेना-देना ही नहीं होता। यह किसी से छिपा नहीं कि किस तरह कुछ नौकरशाह या बड़े कारोबारी चुनाव मैदान में उतार दिए जाते हैं। इसी तरह चुनाव के ठीक पहले पाला बदलने वाले नेता भी प्रत्याशी बना दिए जाते हैं। इससे भी खराब बात यह है कि कई राजनीतिक दल टिकट बेचने का काम करते हैं।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date:24-10-23

महिला-पुरुष अंतर दूर करने के लिए व्यापक नीति की जरूरत

पूनम गुप्ता, (लेखिका एनसीएईआर की महानिदेशक हैं)

वैश्विक स्तर पर श्रम बल में महिलाओं की औसत भागीदारी दर 50 प्रतिशत है, जबकि पुरुषों के मामले में यह अनुपात 80 प्रतिशत है। भारत में श्रम बल पुरुषों की भागीदारी का अनुपात वैश्विक स्तर के लगभग समान है परंतु, महिलाओं के मामले में यह बहुत ही कम यानी 30 प्रतिशत से भी कम है।

रोजगार में दीर्घकाल से चले आ रहे लैंगिक अंतर (जेंडर गैप या महिला-पुरुष अंतर) के विभिन्न बिंदुओं को स्पष्ट करने के लिए हाल में ही डॉ. क्लॉडिया गोल्डिन को अर्थशास्त्र में नोबेल पुरस्कार के लिए चुना गया है। उनके शोध में कहा गया है कि कुछ शर्तें पूरी होने पर ही श्रम बल में महिलाओं की भागीदारी बढ़ती हैं।

उपयुक्त रोजगारों की उपलब्धता (उदाहरण के लिए सेवा क्षेत्र में), महिलाओं का अधिक शिक्षित होना, संतानोत्पत्ति के समय को लेकर निर्णय लेने का अधिकार, सामाजिक लांछना, भेदभाव पूर्ण कानून एवं अन्य संस्थागत पाबंदियों की समाप्ति, अनुकरण करने योग्य महिलाओं की मौजूदगी और परिवार के लालन-पालन के उत्तरायित्व की समाप्ति आदि ऐसी स्थितियां हैं, जो श्रम बलों में महिलाओं की भागीदारी का अनुपात निर्धारित करती हैं। महत्त्वपूर्ण बात यह भी है कि केवल आर्थिक वृद्धि से लैंगिक अंतर कम नहीं हो पाया है। डॉ. गोल्डिन का शोध अमेरिका के आंकड़ों का इस्तेमाल करता है परंतु, उनका निष्कर्ष भारत एवं अन्य देशों के संदर्भों में पूरी तरह लागू होता है। भारत में अर्थव्यवस्था तेजी से सेवा क्षेत्र आधारित हो रही है और शिक्षा में भी लैंगिक अंतर कम हुआ है मगर इसके बावजूद रोजगार में महिलाओं की भागीदारी दर पुरुषों की तुलना में पहले की तरह ही कम है।

इसका निहितार्थ यह है कि हमें उन संस्थागत एवं सामाजिक कारणों पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए जो रोजगार में लैंगिक अंतर बढ़ाते हैं। इसके साथ ही महिलाओं के लिए रोजगार में प्रवेश अधिक सरल, सुरक्षित, लाभकारी एवं पेशेवर तौर पर फलदायक बनाने की दिशा में भी प्रयत्न होना चाहिए। यह भी सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि महिलाओं के परिवार एवं समाज उनके रोजगार में उतरने के निर्णय को अपना समर्थन दें।

परंतु इस मार्ग में कई चुनौतियां हैं। इसका रास्ता निकालने के लिए हमें व्यापक लैंगिक नीति तैयार करने की आवश्यकता है, जिसमें राजकोषीय उपाय, प्रशासनिक उपाय, नियामकीय उपाय, लोक संवाद और मानसिकता में बदलाव सभी प्रमुखता से शामिल किए जाते हैं। यह रणनीति निम्नलिखित प्रस्तावित उपायों के इर्द-गिर्द तैयार की जा सकती है।

पहली बात, भारतीय महिलाएं इसलिए औपचारिक श्रम बल का हिस्सा नहीं बन पाती हैं क्योंकि उनका सारा दिन बच्चों एवं परिवार की देखभाल में बीत जाता है। अगर युवा, बीमार एवं बुजुर्ग के लिए एक देखभाल अर्थव्यवस्था विकसित की जाए तो यह क्रांतिकारी बदलाव ला सकती है। इससे न केवल पुरुष एवं महिला दोनों के लिए रोजगार के प्रत्यक्ष अवसर पैदा होंगे बल्कि महिलाएं भी औपचारिक श्रम बल में भाग लेने के लिए उपलब्ध रहेंगी।

दूसरी बात, पूर्वी एशियाई अर्थव्यवस्थाओं से मिले साक्ष्य बताते हैं कि महिलाओं को आत्म-निर्भर एवं रोजगार के लिए तैयार रहने के लिए आवाजाही (मोबिलिटी) के साधनों की आवश्यकता होती है। महिलाओं को अपने वाहन (साइकिल, बाइक, स्कूटर या कार कुछ भी) खरीदने एवं उन्हें चलाने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए एवं इसके लिए उचित

समर्थन भी दिया जाना चाहिए। वाहन खरीदने के लिए महिलाओं को कर छूट, आसान ऋण की सुविधा, सस्ती ब्याज दर और ड्राइविंग लाइसेंस एवं बीमा के लिए कम शुल्क की पेशकश की जानी चाहिए।

तीसरी बात, भुगतान आधारित रोजगार में महिलाओं की कम हिस्सेदारी की एक मुख्य वजह सुरक्षा का अभाव है। हमारे शहर एवं कार्यस्थल अवश्य सुरक्षित बनाए जाने चाहिए। सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए सार्वजनिक स्थलों पर अधिक संख्या में महिलाओं की उपस्थिति जरूरी है। सुरक्षा कर्मी, पुलिस बल और परिवहन चालक (बसों, वाहन, टैक्सी, मेट्रो एवं रेलगाड़ियों में) आदि पदों के लिए अधिक संख्या में महिलाओं की नियुक्ति की जरूरत होगी।

वर्तमान में भारतीय पुलिस बल में केवल 10 प्रतिशत महिलाएं हैं। यह अनुपात बढ़ाकर 30 प्रतिशत तक करने के लिए प्रयास किया जाना चाहिए और बाद में इसे पुरुषों के बराबर किए जाने का लक्ष्य निर्धारित किया जाना चाहिए। राजनीतिक एवं सामाजिक रूप से स्वीकार्य उपाय के रूप में केवल महिलाओं के लिए नए पद सृजित कर पुलिस बल का आकार बढ़ाया जा सकता है।

महिलाओं को शहरी एवं कस्बाई क्षेत्रों में सस्ते एवं सुरक्षित आवासीय सुविधा भी चाहिए। किराये के घर में अकेली रहने वाली महिलाओं के साथ लिंग आधारित भेदभाव अनिवार्य रूप से समाप्त होना चाहिए। सार्वजनिक जागरूकता अभियान और वर्तमान नियमन के बेहतर क्रियान्वयन से कामकाजी महिलाओं के लिए सुरक्षित एवं उपयुक्त आवास सुनिश्चित करने की प्रक्रिया पूरी की जा सकती है।

चौथी बात, हमें आर्थिक रूप से श्रम बल में महिलाओं की भागीदारी को प्रोत्साहित करना चाहिए। सभी कामकाजी महिलाओं (अकेली, परिवार की प्रमुख या दोहरी आय वाली परिवारों की) के लिए करों में छूट के प्रावधान से मदद मिल सकती है। इससे पारिवारिक स्तर पर भी महिलाओं को समर्थन जुटाने में सहायता मिलेगी।

पांचवीं बात, हमें 40 वर्ष से अधिक उम्र की महिलाओं के श्रम बल में प्रवेश को बढ़ावा देने के लिए अवश्य नए उपाय करने होंगे। डॉ. गोल्डिन के कार्य यह स्पष्ट करते हैं कि महिलाएं बच्चों के लालन-पालन के उत्तरदायित्व से मुक्त होने के बाद कार्य बल में दोबारा शामिल होती हैं। ऐसी महिलाएं स्वास्थ्य, सौंदर्य, शिक्षा, डिजाइनिंग, शोध एवं आतिथ्य जैसे सभी प्रकार के सेवा उन्मुखी क्षेत्रों में भागीदारी बन सकती हैं। वे नई पीढी के हुनरमंद कर्मियों को प्रशिक्षित करने की जिम्मेदारी भी उठा सकती हैं।

छठी बात, हमें शुरू से ही लड़के एवं लड़कियों में लैंगिक अंतर को लेकर किसी तरह का पूर्वग्रह नहीं पालने की सीख देनी चाहिए। खेल, ऐच्छिक कार्यों एवं स्कूल के बाद की गतिविधियों के माध्यम से यह कार्य किया जा सकता है। लड़कों को घरेलू कार्य एवं गतिविधियां सीखने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए और वर्तमान समय में इसकी जरूरत भी है। इसी तरह, लड़कियों को तकनीकी शिक्षा, वित्तीय साक्षरता, ड्राइविंग एवं आत्मरक्षा का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

सातवीं बात, हमें सार्वजनिक जीवन के सभी क्षेत्रों में नेतृत्व स्तर पर पुरुष एवं महिलाओं में असमानता को दूर करने की जरूरत है। नेतृत्व स्तर पर समानता हो तो महिलाओं के आगे बढ़ने का मार्ग और प्रशस्त हो जाएगा। मगर अफसोस की बात है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के 76 वर्षों बाद भी नेतृत्व करने की भूमिका में महिलाओं की भागीदारी अपेक्षित स्तर पर नहीं रही है। उदाहरण के लिए भारतीय रिजर्व बैंक (आरबीआई) के अब तक 25 गवर्नरों में एक भी महिला नहीं रही है। 64 डिप्टी गवर्नरों में केवल तीन महिलाएं इस पद पर पहुंचने में सफल रही हैं। भारत में अब तक हुए 18 मुख्य आर्थिक

सलाहकारों में एक भी महिला नहीं रही है। देश के शीर्ष न्यायालय में अब तक एक भी महिला मुख्य न्यायाधीश नहीं हुई हैं। ऐसा नहीं है कि देश में काबिल महिलाओं की कमी है, बल्कि यह धारणा और महिलाओं को आगे बढ़ाने में गंभीरता के अभाव से जुड़ी समस्या है।

इन उपायों के अलावा हमें महिला एवं बाल विकास मंत्रालय का ढांचा बदलकर इसका नाम मातृ एवं बाल विकास मंत्रालय रखना चाहिए और लिंग समानता के लिए अलग से एक मंत्रालय की स्थापना की जानी चाहिए। इस मंत्रालय का मुख्य मकसद महिलाओं के नेतृत्व में विकास होना चाहिए।

इन उपायों को अगर शीर्ष राजनीतिक नेतृत्व का समर्थन मिले और लोगों के बीच उपयुक्त संदेश दिया जाए तो श्रम बल में महिलाओं की भागीदारी को कम करने वाले सामाजिक एवं आर्थिक कारक दूर होते जाएंगे। लिंग समानता आर्थिक एवं मानवाधिकार दोनों से जुड़ा विषय है। अगर भारत को 2047 तक विकसित अर्थव्यवस्था बनने का सपना साकार करना है तो महिलाओं को आगे बढ़ाने के लिए ये उपाय करने होंगे।

Date:24-10-23

G20 कॉरिडोर पहल की जरूरी बातें

विनायक चटर्जी

सितंबर में दिल्ली में आयोजित जी20 शिखर बैठक में हुई कई घोषणाओं में से जिस एक घोषणा ने व्यापक जिज्ञासा उत्पन्न की वह है आईएमईई कॉरिडोर। आइए जानते हैं इससे जुड़े 10 प्रश्न और उनके उत्तर।

आईएमईई कॉरिडोर क्या है?

इसका पूरा नाम है इंडिया-मिडल ईस्ट-यूरोप कॉरिडोर। यह एक परिवहन लिंक है जो मुंबई से आरंभ होगा जहां से पोत के माध्यम से सामान दुबई बंदरगाह भेजा जाएगा। वहां से उसे रेल से जॉर्डन के रास्ते इजरायल के हाइफा बंदरगाह ले जाया जाएगा। वहां से उसे एक और पोत से ग्रीस के पिराएस बंदरगाह पहुंचाया जाएगा। वहां से वह सड़क और रेल के माध्यम से जर्मनी के हैंबर्ग शहर पहुंचेगा। इस परियोजना में आठ प्रमुख अंशधारक हैं- भारत, संयुक्त अरब अमीरात, सऊदी अरब, इटली, फ्रांस, जर्मनी, अमेरिका और यूरोपीय संघ। इन सभी ने जी20 बैठक के दौरान जारी समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए थे। इजरायल इसमें एक उत्साही 'साझेदार' है।

यह किस तरह का कॉरिडोर है?

इसका उत्तर इस बात पर निर्भर करता है कि क्या इसे केवल एक लॉजिस्टिक कॉरिडोर के रूप में बनाया जा रहा है या फिर यह आर्थिक कॉरिडोर भी बनेगा। फिलहाल तो यही लग रहा है कि यह आर्थिक कॉरिडोर बन सकता है क्योंकि केवल पहले वाला फायदेमंद नहीं रहेगा। एक पोत के माध्यम से आसानी से कंटेनर को मुंबई से हैंबर्ग तक किफायती ढंग से

पहुंचाया जा सकता है। बहरहाल, माना जा रहा है कि इससे आईएमईईसी के मार्ग में आने वाले सभी देशों में कारोबार को गति मिलेगी और लॉजिस्टिक कॉरिडोर के रूप में शुरुआत के बाद यह आगे आर्थिक कॉरिडोर बनेगा।

यह चीन की ऐसी ही पहल से अलग कैसे है?

चीन ने 10 वर्ष पहले बेल्ट ऐंड रोड इनीशिएटिव (बीआरआई) की घोषणा की थी। उस समय कहा गया था कि इसमें दक्षिण और दक्षिण पूर्व एशिया, मध्य एशिया, पूर्वी यूरोप और अफ्रीका महाद्वीप के 100 से अधिक देशों को शामिल करने की योजना है। इसमें बंदरगाह, सड़क, हवाई अड्डे और औद्योगिक पार्क जैसी योजनाएं शामिल हैं। सबसे अहम बात यह है कि चीन ने अधोसंरचना विकास के लिए सस्ते दीर्घकालिक फंड का वादा किया। हालांकि बीआरआई पहल को हाल में आलोचना का सामना करना पड़ा क्योंकि अधिकांश लाभार्थी देशों को अहसास हुआ कि वे कर्ज के जाल में फंस रहे हैं। यह परियोजना अभी भी काफी मजबूत है।

अगर यह इतने बड़े क्षेत्र में विस्तारित है तो मुंबई से क्यों शुरू हो रही है?

यह स्पष्ट है कि तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था के रूप में उभरता भारत इस योजना का अहम हिस्सा है। परंतु आसपास के देशों का इसमें शामिल होना भी अच्छा रहेगा। ऐसे में इसे मुंबई से चटगांव और कोलंबो बंदरगाह तक ले जाया जा सकता है और अंडमान स्थित भारत के अंतरराष्ट्रीय कंटेनर बंदरगाह को भी ध्यान में रखा जा सकता है। बताया जा रहा है कि पश्चिमी भारत के कांडला, जेएनपीटी और मुंद्रा बंदरगाहों को भी शामिल किया जाएगा। चूंकि अफ्रीकी संघ को जी20 समूह में शामिल होने का न्योता दिया गया है तो ऐसे में कुछ पूर्वी अफ्रीकी देशों को शामिल करना भी उचित होगा।

क्या इसका संबंध केवल वस्तुओं के आवागमन से है?

यह जरूरी नहीं है। शुरुआती विचार में ईंधन का आवागमन भी शामिल है। फिलहाल भारत भूटान से पनबिजली खरीदता है और बांग्लादेश को ताप बिजली बेचता है। श्रीलंका के लिए एक अलग बिजली लाइन पर चर्चा हुई है। नवीकरणीय ऊर्जा पर ध्यान देकर सीमापार पारेषण ग्रिड को आकर्षक बनाया जा सकता है।

भारत के लिए क्या लाभ है?

पहली बात तो लॉजिस्टिक लागत में कमी आएगी। दूसरा, सऊदी अरब, खाड़ी देश, पूर्वी यूरोप के देशों के साथ व्यापार शुरू होगा। तीसरा, रेल खंडके निर्माण और संचालन की संभावित जिम्मेदारी भारत का कद बढ़ाएगी। चौथा, इससे संकेत मिलता है कि भारत अब इंडिया-ईरान-रूस इंटरनैशनल नॉर्थ साउथ ट्रांसपोर्ट कॉरिडोर से दूरी बना रहा है जिसमें ईरान के चाबहार बंदरगाह की अहम भूमिका थी। पांचवा, इसे भारत और अरब देशों के बीच रिश्ते मजबूत करने वाला माना जा रहा है।

क्या कुछ नरम मुद्दे हैं जिन पर नजर रखनी चाहिए?

हां, और उनका संबंध इस मार्ग पर अफसरशाही से जुड़ी बाधाओं को हल करने से है। मुंबई से हैंबर्ग जाने वाले कंटेनर को छह जगह चढ़ाना और उतारना होगा। इसके बाद 15 प्रतिभागी देशों की सीमाओं पर अवैध वस्तुओं के आवागमन को

रोकने के लिए जांच होगी। ऐसे में यह बात महत्वपूर्ण है कि पूरी व्यवस्था को प्रभावी बनाने के लिए 'एकल पास' की व्यवस्था अपनाई जाए।

क्या यह सदियों पुराना मसाला मार्ग है?

हां, मध्य एशिया से गुजरने वाले सिल्क रूट यानी रेशम मार्ग से अलग यह सदियों पुराने मसालों के आवागमन वाले मार्ग के सदृश्य है। उस दौरमें रोमन साम्राज्य भारत से मसाले और आभूषण खरीदता था।

इसकी फंडिंग कैसे होगी?

फिलहाल जो स्थितियां हैं उनके अनुसार तो आईएमईईसी बंदरगाहों के संचालन और अरब प्रायद्वीप में नई रेल लाइनों से संचालित होना है। केवल इसी रेल लिंक को शुरू करना है। दुबई और हाइफा बंदरगाह के बीच की दूरी करीब 2,600 किलोमीटर है। अगर मान लिया जाए कि उच्च गुणवत्ता वाली लाइन बिछाने में 30 करोड़ रुपये प्रति किमी का खर्च होगा तो यह राशि करीब 78,000 करोड़ रुपये होगी। यह देखते हुए कि भारत की बुलेट ट्रेन को अकेले जापान ने एक लाख करोड़ रुपये की रियायती वित्तीय मदद मुहेया कराई थी तो यह राशि भी साझेदारों द्वारा आसानी से जुटाई जा सकती है। अपने अंतिम रूप में आईएमईईसी को करीब 20 अरब डॉलर की पूंजी की आवश्यकता होगी ताकि बंदरगाहों की क्षमता बढ़ाई जा सके, नए मालवहन केंद्र स्थापित हों, ऑप्टिकल फाइबर नेटवर्क बिछाया जा सके और बिजली की ग्रिड तथा पाइपलाइन बिछाई जा सकें।

क्या आईएमईईसी भूराजनीतिक कदम है?

यकीनन। यह एक मजबूत संदेश देना चाहता है कि सार्थक उद्देश्य वाले मित्र देशों के समूह ने परिवहन, व्यापार और आर्थिक विकास को लेकर एक ऐसे मॉडल के तहत हाथ मिलाए हैं जो किसी एक दबदबे वाले देश के मॉडल से अलग है। उदाहरण के लिए इटली ने बीआरआई से अलग होने का निर्णय लिया है। इसे कई तरह से भारत की कूटनीतिक जीत की तरह देखा जा रहा है क्योंकि आईएमईईसी में पाकिस्तान और तुर्किये शामिल नहीं हैं। इसके साथ ही यह एक व्यावहारिक और नया मार्ग भी उपलब्ध कराता है। व्यापार से लेकर कूटनीति तक इस पहल में काफी कुछ शामिल है।

जनसत्ता

Date:24-10-23

संकट में सहयोग

संपादकीय

भारत ने संकटग्रस्त फिलिस्तीन को दवा और आपदा राहत सामग्री की खेप भेज कर एक बार फिर यही साबित किया है कि वह मानवीय और लोकतांत्रिक मूल्यों का पक्षधर है। जब भी किसी देश में इस तरह का कोई संकट खड़ा हुआ है,

भारत ने वहां मदद का हाथ बढ़ाया है। कोरोना काल में जब दुनिया के अनेक देशों को दवाओं और टीके की जरूरत थी, भारत ने उन्हें खुले हाथों मदद पहुंचाई। फिलिस्तीन के साथ तो भारत का सदा सदाशयतापूर्ण संबंध रहा है। वह फिलिस्तीन की संप्रभुता और लोकतांत्रिक अधिकारों के पक्ष में खुल कर बोलता रहा है। हालांकि जब इजरायल पर हमास का हमला हुआ, तब भारत ने इजरायल के साथ खड़े रहने का एलान कर दिया, जिसे लेकर एक अजीब तरह का वातावरण बना कि भारत ने अपनी परंपरागत पक्षधरता बदल दी है। मगर जब गाजा के अल अहली अस्पताल पर हमला हुआ, जिसमें करीब पांच सौ लोग मारे गए और सैकड़ों घायल हो गए, तब प्रधानमंत्री ने फिलिस्तीन के राष्ट्रपति से फोन पर बात करके संवेदना प्रकट की और उन्हें हर मदद पहुंचाने का आश्वासन दिया। उस आश्वासन को पूरा करते हुए दवा और आपदा राहत सामग्री की पहली खेप रवाना भी कर दी गई है।

राहत सामग्री की खेप भेज कर भारत ने अब स्पष्ट कर दिया है कि फिलिस्तीन के मूल अधिकारों को लेकर उसके पक्ष में कोई बदलाव नहीं आया है। प्रधानमंत्री ने कुछ दिनों पहले कहा भी था कि फिलिस्तीन की संप्रभुता बहाल होनी चाहिए, उसके हक की जमीन उसे मिलनी ही चाहिए। यह ठीक है कि इजरायल के साथ भारत की नजदीकी पिछले कुछ समय से बढ़ी है और तकनीकी आदि मामलों में वहां से सहयोग भी मिला है। मगर फिलिस्तीन और इजरायल के बीच चल रहे संघर्ष में अगर भारत केवल कुछ व्यापारिक संबंधों की वजह से इजराइल के साथ खड़ा होता, तो उसकी लोकतांत्रिक पक्षधरता का प्रश्नांकित होना स्वाभाविक था। जब भारत ने इजरायल के साथ खड़ा होने की बात कही थी, तब उसका विरोध फिलिस्तीन नहीं, बल्कि आतंकवाद को लेकर था। भारत सदा से आतंकवाद के विरुद्ध रहा है और दुनिया के किसी भी मंच पर, जहां भी अवसर आया है, उसने आतंकवाद के खिलाफ जंग छेड़ने की बात की है। संयुक्त राष्ट्र के मंच से वह लगातार इसकी मांग उठाता रहा है। इसलिए उसने हमास के हमले का विरोध करते हुए इजरायल के प्रति संवेदना व्यक्त की थी। अब जब मामला फिलिस्तीन के अधिकारों का है, तो वह सदा की तरह संकट में उसके साथ खड़ा नजर आ रहा है।

यह ठीक है कि दुनिया आर्थिक और व्यापारिक संबंधों के आधार पर गुटों में बंटी हुई है, जिसमें शक्ति संपन्न देश सदा से एक साथ रहे हैं। इजरायल के साथ अमेरिका खुल कर खड़ा है। भारत के दोनों देशों से संबंध बेहतर हैं। मगर भारत ने केवल अपने व्यापारिक रिश्तों को तरजीह नहीं दी, मानवीय और लोकतांत्रिक मूल्यों को ऊपर रखा। दुनिया जानती है कि फिलिस्तीन के हिस्से की बहुत सारी जमीन इजरायल ने जोर-जबर्दस्ती से छीन ली है। अब वह फिलिस्तीन का अस्तित्व ही मिटाने पर तुला हुआ है। इसे कोई भी लोकतांत्रिक देश उचित नहीं मान सकता। अभी फिलिस्तीन और खासकर गाजा पट्टी में जैसे हालात हैं, वहां लोगों को न तो ठीक से जरूरी चीजें मिल पा रही हैं, न इलाज मिल पा रहा है। ऐसे में भारत का मदद को बढ़ा हाथ बड़ा मानवीय संबल है।